P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
Vol-II * Issue-X*June-2015

प्राचीन इतिहास में पंचायती राज व्यवस्था

गायत्री
व्याख्याता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
एस.पी.सी. राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर

नरेन्द्र निर्वाण
व्याख्याता,
राजनीति विज्ञान विभाग,
सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय,
ब्यावर

सारांश

इतिहास से ही वर्तमान का निर्माण होता है। भारतीय इतिहास में प्राचीन काल का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में ही भारत की, सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कारों की स्थापना की गयी थी। आज भारत में जो पंचायती राज व्यवस्था है, उसके अवषेष हमें प्राचीन इतिहास में भी प्राप्त होते हैं। महाकाव्य काल से लेकर राजपूताना काल तक गाँवों में पंचायतें अपने भिन्न–भिन्न रूपों में मौजूद थी। हर काल में पंचायतें ग्रामीण स्तर पर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती थी। राजा एवं पंचायत के मुखिया के मध्य सम्बन्ध मधुर एवं सशक्त थे। ग्रामीण समस्याओं का समाधान इन्हीं पंचायतों के मुखियाओं द्वारा होता था। इतिहास में वर्तमान के समान लोकतांत्रिक निर्वाचन के साधन नहीं थे, फिर भी पंचायतों के प्रमुख का निर्वाचन मनोनयन करते समय राजा सभी की सहमति का विशेष ध्यान रखता था। इतिहास की पंचायतों के स्वरूप, संरचना एवं प्रकार्यों का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द : पंचायती राज, स्थानीय शासन, ग्रामीण–व्यवस्था, ग्राम पंचायत, इतिहास की पंचायते।

प्रस्तावना

भारतवर्ष में अधिकांश जनसमूह गांवों में रहते हुए एक समान समस्याएं और एक समान परिवेश एवं परिवेदनाएँ, एक समान सभ्यता और संस्कृति जीवित रखते हैं। जो देश अधिकांश गाँवों में निवास करता है तो उस देश की अर्थ–व्यवस्था भी गाँव की समृद्धि पर निर्भर करती है। जिस अनुपात से ग्रामीण जन समुदाय, सम्पन्न, समृद्ध होता है, उसी के अनुरूप प्रान्तीय, राष्ट्रीय समुदाय सुखी, सम्पन्न, समृद्ध समझा जाता है। इसी ग्रामीण समुदाय को सुदृढ़ता, सुसंगठितता, सशक्तता प्रदान करने वाली संस्था को ही पंचायत के नाम से जाना जाता है। पंचायत गाँवों के जनसमूह का सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संगठन है। अतः पंचायत संगठन की सशक्तता, सुदृढ़ता, राष्ट्रोय संगठन की सुदृढ़ता और सशक्तता का द्योतक व परिचायक माना जाता है।

भारतवर्ष विशालकाय भू–भाग में फैला हुआ है, यहाँ विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, जाति, वर्ण एवं अनेकानेक क्षेत्रों के निवासी रहते आये हैं। अनेक विभिन्नताओं के मध्य आज भी समानता एवं एकता है। तीन–चौथाई से भी अधिक नागरिक दूरदराज के क्षेत्रों में रहते हैं जो कि पंचायती राज पर ही निर्भरता रखते हैं। उनकी राजनीतिक संस्कृति ग्रामीण परिवेश की संस्कृति एवं राजनीति से ही संचालित होती है।

'नियेन मुष्टिहत्यथा नि वृतारूण धाम है।
त्व तासोन्यर्वत।।

(ऋग्वेद 18/2)

'द्विषो नो विश्व तो मुखानि नावेन पाश्य।
अप नः शोशुचादध्य।।

(ऋग्वेद 1/97)

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था एवं समाज व संस्कृति के तीन प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। ग्राम्य–व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था एवं पंचायत व्यवस्था। ग्रामीण–व्यवस्था पंचायत व्यवस्था द्वारा संचालित पंचमुखे–परमेश्वरम की भावना पर अवलम्बित है, जहाँ वर्णाश्रम धर्मानुसार समाज व्यवस्थित, संगठित एवं कार्यरत रहते हुए सर्वांगीण एवं समुचित विकास के लिये स्वावलम्बी होता है।

भारत की स्वतन्त्रता को भी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने गाँव पर आधारित मानते हुए कहा था "भारत की स्वतन्त्रता को गाँव के स्तर पर प्रारम्भ करना होगा। प्रत्येक गाँव को एक सर्वशक्ति सम्पन्न गणतन्त्र या पंचायत का रूप देना होगा। आज असंख्य गाँवों से बने हुए इस ढांचे की बनावट, एक के ऊपर एक बनी हुई मीनारों के समान नहीं होगी, वरन वह समुद्र की लहरों की तरह एक क बाद एक फैलते हुए घरों के किस्मी की होगी। "महात्मा गाँधी–"पंचायत

ग्रामों के नव–निर्माण को लोकतन्त्र की आधारशिला माने ह।" पंचायतों को जनता के सादृश्यपूर्ण सहभागिता एवं सहभोज हेतु अधिक शक्ति एवं पुष्टि प्रदान का स्त्रोत एवं संस्थान होता है। यही संस्थान ऐसे होते हैं जहाँ से नया नेतृत्व उभारने व पनपाने का निरन्तर सुअवसर प्रदान होते हैं, जिससे जनसमूह में सहभागिता, स्वावलम्बन, प्रतिनिधित्व और सामाजिक तथा राजनीतिक दायित्व की भावना पैदा होती है।

इसी संदर्भ में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार "पचायतें प्रजातन्त्र की प्राथमिक पाठशाला है। इसमें ग्रामीण लोग प्रजातन्त्र की शिक्षा ग्रहण करते हैं। सहिष्णुता का पाठ पढ़ते हैं तथा एक–दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की कला सीखते हैं। इससे उनमें उत्तरदायित्व और स्वावलम्बन की भावना जागृत होती है। वस्तुतः इस देश के नागरिक प्रजातन्त्र का पहला पाठ पंचायतों में पढ़ते हैं। पंचायतें पशासन, न्याय तथा ग्रामीण सुरक्षा के सभी काम करती हैं।"

महाकाव्य काल में पंचायती राज

वैदिक काल में जिस पंचायत पद्धति का प्रारम्भ हुआ, उसका रूपान्तरित स्वरूप महाकाव्य काल में भी कायम था, प्राचीन भारत में दो मुख्य महाकाव्य थे 'रामायण' और 'महाभारत'। इनके अध्ययन से उस समय की लोकतान्त्रिक व्यवस्था के बारे में जानकारी मिलती है। महाकाव्यों के काल में ग्राम ही प्रषासन की वास्तविक इकाई थी और ग्रामणी इसका प्रमुख था। यह भारतीय लोकतन्त्र की मूल इकाई के रूप में ग्रामों की स्वायत्तता स्वावलम्बन एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण का माध्यम था। ग्रामणी से ऊपर 10 ग्रामों का अधिकारी दशग्रामी, 20 ग्रामों का अधिकारी विषंतीय और 100 ग्रामों का अधिकारी शत्तग्रामी या ग्राम शताध्यक्ष होते थे। अधिपति 1000 ग्रामों का अधिकारी होता था।[1]

रामायण कालीन पंचायती राज

इस काल की राज व्यवस्था एक आदर्श राज व्यवस्था मानी जाती है। वाल्मीकी रामायणकालीन पंचायत का उल्लेख निम्न प्रकार से मिलता है –

"पौर जानपदश्रेष्ठाः नैगमाश्च गणैः सह।
उपनिष्ठत् रामस्य समग्र मति वे चनम्।।
पौर जान पदाश्चाति नैगमश्चकृताञजलि।।[2]

वाल्मीकी रामायण काल में स्थानीय शासन पौर जनपद एवं नैगम आदि के अध्यक्षों द्वारा संचालित था।[3] वैदिक काल की भांति रामायण काल में भी ग्राम के प्रधान को "ग्रामणी" और "महन्तर" के नाम से जाना जाता था। "ग्रामणी" ग्राम का बहुत बड़ा अधिकारी होता था, जो राजा की दृष्टि से अत्यन्त सम्मानित एवं पदाधिकारी होता था।[4] उस समय भी सभा का अस्तित्व था। राजा की नियुक्ति में ये स्थानीय संस्थाएं अपना महत्व रखती थी। इन संस्थाओं के प्रधान श्रेणी–मुख्य "गण वल्लभ" पौर मुख्य एवं ग्रामीण आदि की इच्छा से राजा की नियुक्ति की जाती थी।[5]

रामायण में ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं। जिनसे सभा के अस्तित्व का पता चलता है। राजा राज्यसभा से मन्त्रणा किये बिना कोई भी काम नहीं कर सकता था। रामायण के आयोध्या काण्ड में उल्लेख है कि जब राजा दशरथ ने अपने पुत्र राम को युवराज के रूप में घोषित करना चाहा तो उन्होंने अपने राज्य के नगरों तथा ग्रामों के निवासियों की एक सभा बुलाई और सभा के सामने अपना यह प्रस्ताव रखा और अन्तिम निर्णय सभा पर छोड़ दिया गया और उन्हें इस बात के लिए आश्वस्त किया कि वे अपना निर्णय राजा की इच्छा के अनुसार नहीं वरन् प्रजा के असली हित को ध्यान में रखकर दें। सभा ने इस विषय पर आपस में सलाह–मशवरा कर सभी की सहमति से राजा के प्रस्ताव को मान लिया और एकमत होकर कहा कि 'हे राजन हम सब लोग महान, बलवान, महाबाहु राम को छत्रधारी होकर, उन्हें हाथी पर बैठा हुआ देखना चाहते हैं।"[6]

इससे ज्ञात होता है कि रामायण काल में राज सभा होती थी। उस सभा में बड़े–बड़े सामन्त लोगों के साथ छोटे से छोटे पौर जनपद नागरिक और जनपद ग्रामवासी सदस्य होते थे। राजा अपने स्वयं के कार्य भी उस सभा की अनुमति प्राप्त करके ही करता था।

वाल्मीकी के समय पंचायतों के आधार पर केन्द्रीय सभा एवं मंत्रिपरिषद् का गठन किया जाता था। केन्द्रीय सभा एवं मंत्रिपरिषद् की जननी होने के नाते पंचायत अपने प्रेषित प्रतिनिधियों के द्वारा केन्द्रीय सरकार की सभा मंत्रिपरिषद् एवं शासन या राजा पर अपना पूर्ण प्रभाव रखती थी एवं केन्द्रीय शासन–प्रबन्ध में अपने अधिकारों का प्रयोग करती थी। उस समय ग्रामीण दैनिक जीवन में केन्द्रीय शासन का अधिकार नाम मात्र का था। केन्द्रीय सरकार दो विषयों तक सीमित थी।

1. युद्ध के समय धन एवं जन से सहायता पाना
2. नियत समय पर निर्धारित कर राज–कोष में प्राप्त किया जाना

गाँव की आन्तरिक व्यवस्था में पंचायत पूर्णतया स्वतंत्र थी। दैनिक शासन व्यवस्था की दृष्टि से पंचायत अपने आन्तरिक मामलों में केन्द्रीय सरकार पर निर्भर नहीं रहती थी।

महाभारतकालीन पंचायती राज

भारतीय इतिहास में महाभारत युद्ध का समय विशिष्ट स्थान रखता है। उस समय भारत में बहुत से छोटे–बड़े राज्य थे। उनमें से कुछ में प्रजातन्त्र पद्धति प्रचलित थी। एक सत्तात्मक राज्यों मे राजा, नितान्त स्वच्छन्द नहीं अपितु प्रतिबन्धित था ये प्रतिबन्ध जनता अथवा उसके द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा स्थापित होते थे। इस प्रकार के प्रतिबन्धपूर्ण राज्यों में शासन प्रायः जनतन्त्र पद्धति से चलाया जाता था। इस प्रकार की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था राजा और प्रजा दोनों को स्वीकार्य थी। महाभारत काल में इस तरह के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं कि जब प्रजा ने स्वयं राज्यसत्ता में हस्तक्षेप करके राजा के अधिकारों को छीना और अपने प्रतिनिधियों द्वारा शासन कार्य चलाने की व्यवस्था की।

महाभारत में इस बात की जानकारी मिलती है कि जनपद के प्रत्येक ग्राम में बुद्धिमान शूरवीर और कार्यकुशल पांच पंच मिलकर ग्राम की व्यवस्था करते थे परन्तु महाभारत में इस बात का किसी प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता कि उस समय के गणराज्यों में राजा अथवा सभासदों के निर्वाचन में ग्राम समिति का हाथ था।[7] महाभारत कालीन पंचायतों में निम्न प्रकार उल्लेखित हैः–

तत्र पुण्याजनपदाश्चत्वकारो लोक सम्मताः।
मंगाश्च मशकाश्चैव मनसा मन्दगास्तथा।
मंगा ब्राह्मण भूयिष्ठाः स्वधर्म निरतानृप।।[8]

वैदिक काल में जिस पंचायत प्रणाली का प्रादुर्भाव था उसका बदला हुआ स्वरूप रामायण काल को पार करके महाभारत काल में भी आया। महाभारत काल में भी स्थानीय शासन पौर श्रेणी आदि संस्थाओं के द्वारा संचालित था जो पंचायत के पर्यायवाची शब्द थे। पौर के प्रधान पौर–वृद्ध कहलाते थे, जो केन्द्रीय सभा में भी बैठकर केन्द्रीय सरकार के शासन कार्य में भाग लेते थे।

श्रेणी को राज्य की ओर से सेना रखने का भी अधिनियम प्राप्त था। श्रेणी–धर्म (नियम) के अनुसार श्रेणी का संचालन होता था। आमतौर से ग्राम का शासन ग्राम–वृद्ध के द्वारा संचालित था, जो ग्राम पंचायत का ही स्वरूप था। ग्राम पंचायत की आन्तरिक व्यवस्था के लिए किसी प्रकार के बंधन नहीं थे अपितु पूर्णतः स्वतन्त्र थी। पंचायत अपनी साधारण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दूसरों पर आश्रित नहीं थी।[9]

इनके अलावा चार प्रकार के और जनतांत्रिक राज्य थे, जो पंचायत पद्धति पर आधारित थे –

वैराज्य

वैराज्य में चार जनपद थे– मांग, मषक, मानस और मन्दग। यहाँ न कोई राजा था और न कोई दण्ड देने वाला था। वहाँ के लोग धर्म के ज्ञाता थे और स्वधर्म पालन के ही प्रभाव से एक दूसरे की रक्षा करते थे।

पारमेष्ठय राज्य

परमेष्ठय राज्य में प्रत्येक गृहपति को सभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त था। इस प्रकार के राज्य में सभी व्यक्ति एक दूसरे के साथ मिलकर व्यवहार करते थे।

गणराज्य

गणराज्य में जाति और कुल के आधार पर प्रतिनिधित्व प्राप्त होता था।

संघ राज्य

संघ राज्य कई इकाईयों के मेल से बनता था। जिसे राष्ट्र–मण्डल की भी संज्ञा दी जाती थी। इस तरह गांव से राष्ट्र तक यानि नीचे से ऊपर तक की शासन–व्यवस्था पंचायत–पद्धति पर आधारित थी।[10]

कौटिल्य कालीन पंचायती राज

कौटिल्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ कौटिल्य के अर्थषास्त्र में ग्राम पंचायतों की स्थानीय शासन एवं न्याय व्यवस्था में भूमिका का उल्लेख किया है।[11]

"क्षेत्र विवादं सामन्त ग्राम–वृद्धाः वुर्युः।
तेषा द्वेधीमवियतो बहवः शुचयोअनुभतावाव
तीनियच्छेषुः। मध्यं वा गृहणीयुः।
सीमा विवाद ग्रामयोस्मयोः सामन्ताः।
पंचग्रामी दशग्रामी वा सेंतुनिः स्थापयेत्।
कृत्रिमैर्वाकुर्यात्।।"[12]

कौटिल्य के काल में कुल, श्रेणी, गण, द्वेराज्य, वैराज्य, ग्रामसभा एवं संघ द्वारा स्थानीय प्रबन्ध किया जाता था जो पंचायत के पर्यायवाची शब्द थे। उस समय पंचायत के तीन अंग थे– व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका। उस समय एक पृथक न्याय व्यवस्था भी विद्यमान थी। कौटिल्य के अनुसार स्थानीय आपसी–विवादों का निर्णय ग्राम के वृद्धों एवं सामन्तों के द्वारा ही किया जाता था। यदि ग्राम वृद्ध या सामन्त किसी विवादग्रस्त विषय पर निर्णय लेने में मतभेद करते थे, तो उस स्थान की जनता की अनुमति से वहाँ के धार्मिक पुरुष उस विवादास्पद विषयों पर निर्णय लिया करते थे अथवा मध्यस्थ को नियत कराकर उनसे निर्णय कराया जाता था। गांवों की सीमा सम्बन्धी मतभेदों पर निर्णय सम्बन्धित ग्रामों के सामन्त या ग्रामवृद्ध मिलकर देते थे। ग्राम वृद्ध उस समय ग्राम के मुखिया को कहा जाता था। पांच ग्रामों का मुखिया पंचग्रामी तथा दस ग्रामों का मुखिया दषग्रामी कहलाता था। उस समय ग्रामीण न्यायालयों के अपने पृथक विधान होते थे।[13] उस समय स्थानीय स्वशासन व्यवस्था संघ के द्वारा भी की जाती थो। कौटिल्यानुसार संघ बहुत शक्तिशाली और प्रबल व महत्वपूर्ण संस्था थी। संघ दो प्रकार के होते थे –

(1) अनुगुण (2) विगुण

राजा के अनुकूल भाव रखने वाला संघ अनुगुण कहलाता था और राजा के विपरित भाव रखने वाला संघ विगुण कहलाता था। कौटिल्य काल में ग्रामीण शासन एवं राजनीति पंचायत पद्धति के माध्यम से अक्षुण्य रही थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह प्रमाणित होता है कि राज्य ग्रामीण जीवन में न्यूनतम हस्तक्षेप करता था।[14]

पाणिनिकालीन पंचायती राज

पाणिनिकाल में गृह से गणराज्य तक का प्रषासनिक संगठन पंचायत पद्धति पर आधारित था। भले ही उसका स्वरूप बदला हुआ था।

"बहु पूग गण संघस्थ तिथुक।"[15]

गणराज्यों में शासन प्रबन्ध बहुमत के द्वारा किया जाता था। पूग, गण और संघ आदि पंचायत के पर्यायवाची शब्द थे। पाणिनी के दामन्यादि पर्श्वादि थे, दियादि गणों के अन्तर्गत तैंतीस गणराज्य थे–(1) भरत (2) धर्तिय (3) त्रिगन्त (4) उषानेद (5) वार्तिय (6) शैक्रिय (7) वसु (8) शौभ्रय (9) योधेय (10) मस्त (11) पिशाच (12) अषनि (13) कार्पपण (14) सत्वत् (15) दषाई (16) वैजवादि (17) औदकि (18) पशु (19) असुर (20) रक्षस् (21) वाड, लोक (22) वयस् (23) यामिति (24) औलादि (25) काकदन्ति (26) अच्युतन्ति (27) शत्रुदन्ति (28) सर्वसैनी (29) वैन्दवि (30) मौजायन (31) तुलम (32) सावित्रीपुत्र (33) ज्यावाणेय। ये सभी पंचायत के उदाहरण माने जाते थे। अनेक गणराज्य की तरह संघ, शब्द भी अपने सामान्य अर्थ में होता है, किन्तु विशेष अर्थों में संघ एक संस्था था, जिसकी एक इकाई के रूप में गण था।

उस समय पर्वतीय प्रदेशों में अयुधजीवी संघो का अस्तित्व था, जो पंचायत की तरह था।

"आयुधजीविभ्यष्छः पर्वत"[16]

इसके अलावा बाहीक देश में, राजन्य, वृक, दामिनी, पर्श्व, त्रिगर्न्तपष्ठ, यौधेय आदि नामों से पंचायतें थीं, जो आयुधजीवि संघ के अन्तर्गत संगठित थी।

बौद्धकालीन पंचायती राज

ग्रामीण शासन की प्रारम्भिक इकाई पंचायत का उत्कृष्ट स्वरूप बौद्ध काल में था। बुद्धकालीन भारत का समय 500–400 ईसा पूर्व माना जाता है, जब बौद्ध धर्म के ग्रन्थों, जातकों का निर्माण हुआ। बौद्ध धर्म में भारत के 16

महाजनपदों की सूची दी गई है जिन्हें निम्न नामों से पुकारा गया है।

(1) काशी (2) कौशल (3) अंग (4) मगध (5) वज्जी (6) मल्ल (7) चेढ़ी (8) वस (9) कुरू (10) पाञ्चाल (11) मच्छ (मत्स्य) (12) शूरसेन (13) अस्सक (14) अवन्ती (15) गन्धार (16) कम्बोज[17]

इनमे से कुछ महाजनपदों में राजतन्त्र चलता था और कुछ में गणराज्य पद्धति प्रचलित थी। वज्जी, मल्ल और शूरसेन राज्यों का गणराज्य होना निश्चित माना जाता है। इसमें वंशानुगत राजा नहीं होकर अपितु जनता स्वयं अपना शासन चलाती थी। यानि इस प्रकार से यहां पंचायती राज व्यवस्था प्रचलित थी।

इन तीनों गणराज्यों के अलावा भी और गणराज्य उस समय निम्न थे–

(1) कपिलवस्तु के शाक्य (2) रामग्राम के कोलिय
(3) मिथिला के विदेह (4) कुशीनारा के मल्ल
(5) पावा के मल्ल (6) पिप्पनी वन के मोरिय
(7) अल्लकप्प के बुलि (8) सुसुमार पर्वत के भग्म
(9) केसयुत के कालाप (10) वैशाली के त्रिच्छवि।[18]

तत्थनिच्च कालं रज्जं कारित्वा वसन्तानं यैवराजनाम्।
सत सहास्सानि सन्तसतानि सन्त चरा जानो होति
तत कायेव उप राजनों तत का सेनापति
नो तत का मन्डागारिका।।[19]

बौद्धकालीन भारत में ग्रामीण स्थानीय शासन ग्राम सभा, पूग एवं गण द्वारा होता था। ग्राम से लेकर राष्ट्र तक की शासन पद्धति पंचायत–पद्धति पर आधारित थी। उस समय की पंचायत में न्याय और प्रषासनिक दोनों कार्य किये जाते थे। बौद्धकालीन गणराज्यों में ग्राम सभा या पंचायत की सभा का अहम् स्थान था। सभा के कार्य एवं निर्णय बहुमत द्वारा सम्पादित होते थे। ग्राम सभा से गणराज्य तक की व्यवस्था लोकतान्त्रिक थी जिसमें जनता के हितों का विषेष ध्यान रखा जाता था। उस समय के राज्यों में महामात, वोहरिक, सूत्रधार, सेनापति अट्ठकुल, उपराजानः राजानः आदि पदाधिकारी हुआ करते थे। इनके अलावा ग्राम–ग्रामीणी, पूग–ग्रामीणी, भोजक, भंडारिक एवं राष्ट्रिक आदि पंचायत के पदाधिकारीगण थे।

उस समय के लिच्छवि गणराज्य छोटे–छोटे स्थानीय राज्यों में विभाजित थे जो पंचायत के द्योतक थे। स्थानीय राज्यों के प्रधान राजान कहलाते थे। राजानः लिच्छवि संघ की आम सभा क सदस्य होते थे। उस समय वैषाली में 770 राजानः रहते थे। राजान के साथ उप–राजान एक सेनानति एवं एक भांडारिक रहते थे। उस समय सम्पूण्र राज्य राजानः में बंटे हुए थे। राजान राज्यसभा का सदस्य था। राजानः अपने क्षेत्र में आय एकत्रित करने के लिए भांडारिक नामक पदाधिकारी रखता था। राज्य में शान्ति, शक्ति और सुरक्षा सम्बन्धी व्यवस्था के लिए पुलिस–व्यवस्था थी, जिसके ऊपर एक सेनापति था। इन ग्रामीण स्थानीय पंचायत–पदवाहकों का निर्वाचन गणतान्त्रिक तरीके से होता था।उस समय धार्मिक कार्यों, अनुष्ठानों में पंचायत पद्धति व्यवहार में लाई गयी थी।

डॉ. रीस डेविड्स ने बौद्धकालीन गणराज्यों के सम्बन्ध म अपने ग्रन्थ में लिखा है कि "शासन का प्रजातन्त्री स्वरूप महात्मा बुद्ध के देश में तथा उसके आसपास पाया जाता है। वे लिखते हैं कि शाक्य राज्य के सभागार कई नगरों में विद्यमान थे, उनके निवासी अपन संस्थागारों में एकत्र होकर अपने–अपने स्थानीय नियमों की व्यवस्था किया करते थे।"[20]

जैन साहित्य में पंचायती राज

बौद्ध साहित्य की भाँति जैन साहित्य में भी ग्रामीण परिवेष की पंचायत प्रणाली का उल्लेख है। उन उल्लेखों में सबसे महत्वपूर्ण उल्लेख आचारंग सूत्र में मिलता है। उसमें (1) अषयणि (2) गणरायानि (3) जुवा रायानि (4) दोरवख्याणि (5) वैरज्जाणि (6) विरूद्ध रज्जाणि आदि विभिन्न प्रकार के शासन के द्योतक थे जो स्थानीय व्यवस्था में कार्यरत पंचायत के पर्यायवाची शब्द थे। इनके अतिरिक्त उसी आचारंग सूत्र में अराज्य, वैराज्य, गणराज्य एवं विरूह राज्य जनतांत्रिक रूपों में स्थानीय शासन के केन्द्र थे[21] जो पंचायत की ही तरह थे।

मौर्यकालीन भारत में पंचायती राज का सशक्तीकरण

मौर्यकालीन पंचायतों की गतिविधियों की झलक हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलती हैं। मौर्यकाल में शासन की सुविधा की दृष्टि से प्रान्तों को निम्नांकित प्रकार से विभाजित किया हुआ था– (1) जनपद, (2) स्थानिक, (3) द्रोणमुख, (4) स्वार्वटिक, (5) संगम और (6) ग्राम[22]

मौर्यकाल में ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी जिसका मुखिया ग्रामिक कहलाता था। ग्रामिक को राज्य की ओर से वेतन नहीं मिलता था, वह ग्राम के लोगों द्वारा चुना जाता था। इसलिए कौटिल्य के वेतन पाने वाले अधिकारियों में उसके नाम का वर्णन नहीं किया है। अर्थशास्त्र में ग्राम के वृद्धों की कहीं–कहीं वर्णन किया गया है, वे साधारणतया लोगों को सलाह देते थे और ग्राम के छोटे–छोटे झगड़ों को निपटाने में सरकारी कर्मचारियों की सहायता करते थे। खेती के योग्य जमीनें व्यक्तिगत अधिकारी की जमीनों से बनायी जाती थी जबकि चारागाह और जंगली जमीन सबके लिए होती थी।सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने ग्रामीण संस्थाओं की कार्य–व्यवस्था में कभी अवांछनीय हस्तक्षेप नहीं किया और हर प्रकार से उन्हें 'स्वशासित' रहने दिया। हर ग्राम की एक सभा होती थी जहां स्थानीय मसलों पर बहुमत से फैसले लिए जाते थे। एक बार निर्णय होने पर वह सभी को स्वीकार्य था। उस समय ग्राम सभाओं को स्थानीय कानून बनाने का भी पूरा अधिकार प्राप्त था और इन कानून को तत्कालीन सभाओं द्वारा पूरी–पूरी मान्यता दी जाती थी।

जिला प्रशासन

मौर्यकालीन जिला प्रशासन के अन्तर्गत 'स्थानिक' और 'गोप' अपने अधिकारियों की सहायता से राजस्व और आम प्रषासन चलाते थे। गोपों के अधिकार में पांच से दस ग्राम होते थे। वह सीमाओं का रख–रखाव दान और गिरवी को रजिस्टर में अंकित करता था और लोगों की दयनीय हालत का सही रिकार्ड संधारण करता था। स्थानिक अपने अधीन जिलों में यह कार्य करते थे और गोप उनकी अधीनता में कार्य करते थे। 'स्थानिक' समाहर्ता के प्रति उत्तरदायी होता था, जो प्रादेशिकों की सेवाओ को चलाता था। ये प्रादेशिक अशोक के

शिलालेखों में वर्णित प्रादेशिकों की भांति होते थे जो स्थानीय प्रशासन का निरीक्षण करते थे। जिला प्रशासन में भिन्न–भिन्न विभागों में भिन्न–भिन्न स्तर पर निरीक्षक हुआ करते थे।[23]

गुप्तकालीन पंचायती राज

जिस प्रकार की व्यवस्था मौर्यकाल में उपलब्ध थी वैसे ही ग्रामीण शासन व्यवस्था गुप्तकाल में थी। ग्राम का शासन ग्रामीण स्वयं संचालित किया करते थें। गुप्तकाल में स्थानीय शासन व्यवस्था पंचायतों के सहयोग से की जाती थी। उस समय की पंचायतों को अतिरिक्त मामलों में पूर्ण स्वावलम्बन एवं स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उसके पदवाहकों का निर्वाचन सभी जातियों और वर्गों के द्वारा किया जाता था। उस समय पश्चिमोत्तर भारत में पौर जनपदों और दक्षिण भारत में ग्राम सभाओं के द्वारा स्थानीय प्रबन्ध किया जाता था, जो पंचायत के पर्यायवाची शब्द थे।[24]

डॉ. अल्टेकर के अनुसार 'केन्द्र तथा प्रान्तों में गुप्त प्रशासन सुव्यवस्थित था। केन्द्रीय सचिवालय कार्यकुशल था और जिलों तथा ग्रामों में होने वाली घटनाओं की सूचना प्राप्त कर सकता था.....सरकार प्रजा के सांसारिक तथा आध्यात्मिक हितों की रक्षा करती थी। प्रषासन के विकेन्द्रीकृत होने के कारण जनता का भी शासन में हाथ था और स्थानीय संस्थाओं को बहुत से अधिकार प्राप्त थे।

राजपूतकाल में पंचायती राज

शक, कुषाण, हूण आदि विदेशो जातियों के निरन्तर आक्रमणों के कारण भारत में सामन्त पद्धति का विकास हुआ पर सामन्त पद्धति होने के बावजूद भी भारत में ग्राम पंचायतें कायम रही। ग्रामवासी अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले मामलों की व्यवस्था ग्रामसभाओं जिसे ग्रामवृद्धों की समिति कहा जाता है के द्वारा स्वयं करते थे। दश में चाहे किसी भी राजा का शासन हो ग्रामवासियों को अपने कार्य में इससे विशेष बाधा नहीं पड़ती थी। राजपूत राजाओं ने ग्राम पंचायतों में किसी भी प्रकार दखलन्दाजी करने का प्रयास नहीं किया। दक्षिण भारत में इस युग के अनकों शिलालेख व ताम्रपत्र मिले हैं जो ग्राम पंचायतों पर प्रकाष डालते हैं। इन शिलालेखों व ताम्रपत्रों से जानकारी मिलती है कि ग्राम के मुखिया को 'ग्रामिणी' कहा जाता था और ग्राम सभा अनेक समितियों में विभक्त थी। ये समितियाँ विभिन्न विषयों का प्रबन्ध करती थी। जैसे (1) दान की सम्पत्ति (2) जलाशय, (3) उद्यान, (4) न्याय (5) कोष (6) मन्दिर (7) साधु तथा विस्तृत लोगों का निर्वाह (8) खेती और (9) ग्राम का शासन। यद्यपि जनता की स्वतन्त्रता ग्राम पंचायतों द्वारा सुरक्षित थी पर राजपूत राजा निरंकुश थे, उनकी शक्ति व अधिकार पर अंकुश लगाने वाली कोई सभा इस समय में नहीं थी, पर राजा की सभा या दरबार में राज्य के प्रमुख पुरुष उपस्थित रहा करते थे और राजा युद्ध व अन्य महत्वपूण प्रश्नों पर बहुधा उनसे सलाह–मशवरा किया करते थे।[25]

अध्ययन के उद्देश्य

1. लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की आधारभूत इकाई पंचायतों के ऐतिहासिक स्वरूप को जानना।
2. प्रजातन्त्र की प्रथम पाठशाला पंचायतों का महाकाव्य काल से लेकर राजपूत काल तक उनकी स्थिति, संगठन, संरचना एवं प्रकार्यों का अध्ययन करना।
3. प्राचीन इतिहास में पंचायतों के प्रमुख पदाधिकारियों के कार्यों एवं स्थिति का अध्ययन करना।
4. यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना कि भारत में पंचायती राज व्यवस्था आदिकालीन प्रशासनिक एवं स्थानीय आवश्यकताओं की व्यवस्थित संरचनात्मक व्यवस्था रही है।

अध्ययन पद्धति :

1. ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति
2. अर्न्तविषयक अध्ययन पद्धति

निष्कर्ष

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था मूलतः ग्रामीण राजनीतिक व्यवस्था है, ग्रामीण स्तर पर राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य पंचायतें करती हैं। इन पंचायतों की नींव इतिहास में भी मौजूद थीं। इसलिए भारत का इतिहास पंचायतों के स्वरूप, संगठन, संरचना प्रकार्य के बारे में जानकारी प्रदान करता है। यह जानकारी भारतीय पंचायती राज के लिए वरदान साबित हो इसलिए इतिहास की पंचायतों से शिक्षा लेते हुए वर्तमान में जो पंचायती राज व्यवस्था में दोश एवं कमियाँ आ गयी हैं उन्हें दूर किया जाए तथा उन्हें और अधिक सशक्त बनाया जाए ताकि ये पंचायतें ग्राम्य जनजीवन को सुविधायुक्त एवं स्वावलम्बी बना सकें।

सन्दर्भ सूची

1. सिन्हा डॉ. नवीन कुमार "भारत में पंचा यती राज का इतिहास" ग्राम विकास प्रकाषन, अलीगंज, लखनऊ, 1997, पृ.सं. 21
2. वाल्मिकी रामायण : अयोध्याकाण्ड के सर्ग 14 श्लोक, 40, 52
3. वाल्मिकी रामायण : अयोध्याकाण्ड के सर्ग 14 श्लोक, 40, 52
4. श्यामलाल पाण्डेय "रामायण और महाभारतकालीन जनतंत्रवाद" अवध पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ, विक्रम संवत् 2007, पृ.सं. 212
5. श्यामलाल पाण्डेय "रामायण और महाभारतकालीन जनतंत्रवाद" अवध पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ, विक्रम संवत् 2007, पृ.सं. 305
6. सिन्हा डॉ. नवीन कुमार "भारत में पंचायती राज का इतिहास" ग्राम विकास प्रकाशन, अलीगज, लखनऊ, 1997, पृ.सं. 22
7. सिन्हा डॉ. नवीन कुमार "भारत में पंचायती राज का इतिहास" ग्राम विकास प्रकाशन, अलीगंज, लखनऊ, 1997, पृ.सं. 23
8. महाभारत : भीष्म पर्व अ. 11, श्लोक 35 से 39
9. श्यामलाल पाण्डेय "रामायण और महाभारतकालीन जनतंत्रवाद" अवध पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ, विक्रम संवत् 2007, पृ.सं. 212 व 305
10. श्यामलाल पाण्डेय "रामायण और महाभारतकालीन जनतंत्रवाद" अवध पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ, विक्रम संवत् 2007, पृ.सं. 211, 218 व 227

11. सिन्हा डॉ. नवीन कुमार "भारत में पंचायती राज का इतिहास" ग्राम विकास प्रकाशन, अलीगंज, लखनऊ, 1997, पृ.सं. 29
12. कौटिल्यः अर्थशास्त्र–3–9–1 एवं देवीदत्त शुक्ल "प्राचीन भारत में जनतंत्रवाद" हिन्दी समिति उत्तरप्रदेश लखनऊ, पृ.सं. 68, 80, 82, 83
13. कौटिल्यः अर्थशास्त्र–3–9–1 एवं देवीदत्त शुक्ल "प्राचीन भारत में जनतंत्रवाद" हिन्दी समिति उत्तरप्रदेश लखनऊ, पृ.सं. 236
14. शर्मा अशाक कमार "भारत में स्थानी य प्रशासन" दीपक परनामी आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स संशोधित संस्करण 2002, 2005 पृ.सं. 15
15. पाणिनी सूत्र : 5–2–52
16. पाणिनि सूत्र : 4–3–9
17. सिन्हा डॉ. नवीन कुमार "भारत में पंचायती राज का इतिहास" ग्राम विकास प्रकाशन, अलीगंज, लखनऊ, 1997, पृ.सं. 25
18. सिन्हा डॉ. नवीन कुमार "भारत में पंचायती राज का इतिहास" ग्राम विकास प्रकाशन, अलीगंज, लखनऊ, 1997, पृ.सं. 26
19. शुक्ल देवीदत्त "प्राचीन भारत में जनतंत्रवाद" हिन्दी समिति–उत्तरप्रदेश, लखनऊ, पृ.सं. 126–127, 131
20. डेविड्स डॉ. रीस ग्रन्थ "बुद्धिस्ट इण्डिया", 1987, पृ. सं. 115
21. शुक्ल देवीदत्त "प्राचीन भारत में जनतंत्रवाद" हिन्दी समिति–उत्तरप्रदेश, लखनऊ, पृ.सं. 135, 159
22. शर्मा अशाक कुमार "भारत में स्थानी य प्रशासन" दीपक परनामी आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स संशोधित संस्करण 2005 पृ.सं. 15
23. सिन्हा डॉ. नवीन कुमार "भारत में पंचायती राज का इतिहास" ग्राम विकास प्रकाशन, अलीगंज, लखनऊ, 1997, पृ.सं. 26, 27
24. शुक्ल देवीदत्त "प्राचीन भारत में जनतंत्रवाद" हिन्दी समिति–उत्तर प्रदेश, लखनऊ, पृ.सं. 164
25. सिन्हा डॉ. नवीन कुमार "भारत में पंचायती राज का इतिहास" ग्राम विकास प्रकाशन, अलीगंज, लखनऊ, 1997, पृ.सं. 29–30